डूबो मत, लगाओ डुबकी

स्व - पर पहिचान
ज्ञान पर आधारित है
आगमालोकन आलोड़न से
गुरु वचन - श्रवण - चिन्तन से
अपने में
ज्ञान गुण का स्फुरण होता है
पर! सक्रिय ज्ञान
आत्मध्यान में बाधा डालता है
विकल्पों की धूल उछालता है
ध्याता की साधक दृष्टि पर ।
किन्तु वही हो सकता है
उपास्य में अन्तर्धान!
जिसका ज्ञान !
शब्दालम्बन से मुक्त हुआ है
बहिर्मुखी नहीं
अन्तर्मुखी
बहुमुखी नहीं
बन्दमुखी
एकतान !
यह सही है
तैरने की कला से वंचित है
उसे सर्वप्रथम
तारण-तरण तुम्बी का सहारा अनिवार्य है,
उस कला में निष्णात होने तक !

जब डुबकी लगाना चाहते हो तुम !
गहराई का आनन्द लेना चाहते हो तुम !
तब तुम्बी बाधक है ना !
इतना ही नहीं
पीछे की ओर पैर फैलाना
आजू - बाजू हाथ पसारना
यानी तैरना भी
अभिशाप है तब ।

यह बात सत्य है
कि
डुबकी वही लगा सकता
जो तैरना जानता है
जो नहीं जानता
वह डूब सकता है
डूबता ही है
डूबना और डुबकी लगाने में
उतना ही अन्तर है
जितना
मृत्यु और जीवन में ।

□□□

तुम कैसे पागल हो

रेत रेतिल से नहीं
रे! तिल से
तेल निकल सकता है
निकलता ही है विधिवत् निकालने से
नीर - मन्थन से नहीं
विनीत - नवनीत
क्षीर - मन्थन से
निकल सकता है
निकलता ही है
विधिवत् निकालने से ।
ये सब नीतियाँ
सबको ज्ञात हैं
किन्तु हित क्या है ?
अहित क्या है ?
हित किस में निहित है कहाँ ज्ञात है ?
किसे ज्ञात है ?
मानो ज्ञात भी हो तुम्हें
शाब्दिक मात्र !
अन्यथा
अहित पन्थ के पथिक
कैसे बने हो तुम !
निज को तज
जड़ का मन्थन करते हो
तुम कैसे पागल हो
तुम कैसे 'पाग' लहो ?

□□□

स्वयं वरण

तू तो अपना ही गीत
गुनगुनाता रहता है
रे ! स्वैरविहारी मन
जरा सुन !
संयम का बन्धन
बन्धन नहीं है
वरन ।
अबन्ध दशा का
अमन्द यशा का
अभिनन्दन वन्दन है
अन्यथा
मुक्ति रमा वह
मोहित - सम्मोहित हो
उपेक्षित कर इतरों को
संयत को ही
क्यों करती है
स्वयं वरण ?

□□□

भीगे पंख

सूरज सर पर
कस कर तप रहा है
मै निसंग हूँ।
आसीन हूँ
सुखासन पर
ललाट तल से
शनैः शनैः
सरकती सरकती
भृकुटियों से गुजरती
नासाग्र पर आ
पल भर टिकी
गिरती है
स्वेद की बूँद
वायुयान गतिवाली
स्वच्छन्द उड़नेवाली
मक्षिका के पंख पर !

और वह मक्षिका
भीगे पंख !
उड़ने की इच्छा रखती
पर ! उड़ ना पाती है
धरती से ऊपर
उठ न पाती

यह सत्य है कि
रागादिक की चिकनाहट
और पर का संपर्क
परतन्त्रता का
प्रारूप है ।

□□□

उषा में नशा

उषा - काल में
उतावली से
तृषा काय की
बिना बुझाये
कहाँ भाग रहा है तू ?
मुझे पूछते हो तुम ।
उषा में नशा करने वालो
निशा में मृषा चरने वालो !
यह रहस्य अज्ञात होना
दशा पागल की है

दिशा चाहते हो
पाना चाहते हो
सही दशा वह!
जरा सुनो !
स्वयं यह
उषा भाग रही है
जिसके पीछे पीछे
निशा जाग रही है
जिसका दर्शन
'यह' नहीं चाहता अब ।

□□□

प्राकृत पुरुष

मदन मोहिनी
रति सी मानिनी
मृदुल - मँजुल
मुदित - मुखी
मृग दृगी
मेरी मति
आज बनी है
मलिन मुखी म्लान
अध खुली
कमलिनी सी
और लेटी है
एक कोने में
ना सोने में
ना रोने में
जिसे चैन है

बार बार बदल रही है
करवटें
इस स्थिति में
अपने होने में भी
उसे अब ! हा!
अर्ध मृत्यु का संवेदन है
पूर्ण वेदन है
मेरी निरी
करुण चेतना
खरी
वहीं खड़ी खड़ी
समता की साक्षात् धरती
साहस धरी
हृदयवती सतियों में सती
उसे देख

अपने उदार अंक में
पृथुल मांसल
जंघा का बल दे
आकुलता से आहत
परम आर्त।
मति मस्तक को
ऊपर उठा लिया है
और अपने
प्रेम भरे
मखमल मृदुल
कर पल्लवों से
हलकी हलकी सी
सहला रही है
संवेदनशील शब्दों में
संबोधित करती
साहस बाँधती
किन्तु वह
वचनामृत की प्यासी नहीं
विरागता की दासी नहीं
सरागता की अपार राशि जो रही
अपनी ही
मार्दव माँसल बाहुओं से
श्रवण द्वार बन्द कर
पीछे की ओर
दो दो हाथों से
शिर कस कर
बाँध लिया ।

कुटिल कुटिल तम
कज्जल काले
कुन्तल बाल
भाल पर आ
बिखरे हैं
निरे निरे हो
अस्त व्यस्त
इस संकेत के साथ
कि
समुज्ज्वल - भाव - भूमि पर
अब भूल कर भी
दृष्टि - पात सम्भव नहीं ।
यह पूर्णतः प्रकट है
कि
इस मति का अवसान काल
निकट सन्निकट है
'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः
'अन्ते मता सो गता'
सूक्तियाँ सब ये
चरितार्थ हो रही हैं
सूखी
गुलाब फूल की लाल पाँखुडी सी
जिसके युगल
अधर पल्लव हैं
जिन में
परमामृत भरा था
मृत हुआ क्या, विस्तृत हुआ?
या किसी से अपहृत हुआ ?

यह रहस्य
किसे और कब
अवगत हुआ है ?
बिल से अध - निकली
सर्पिणी सी
मति मुख से
बार बार बाहर आकर
अधरों को सहलाती
और सरस बनाने का
प्रयास करती दुलार प्यार करती
लार रहित रसना ।
और
समग्र अंग का जल तत्व
भीतर की तपन से
उर्ध्वमुखी हो
ऊपर उठा है
और यही कारण है कि
जिस के तरल सजल
युगल लोचन हैं
जिन में अनवरत
करुणा की
सजीव तरंग
तैर कर तट तक आ रही है
तापानुपात की अधिकता से
बीच बीच में
डब डब, डब डब
भर आते हैं

और वे दृग बिन्दु
टप टप, टप टप
गोल गोल
लाल लाल
सरस रसाल
युगल कपोल पर
मन्द ध्वनित हो
नीचे की ओर पतित होते
सूचित कर रहे है
पाप का फल, प्रतिफल
अधः पतन है।
अगम अतल
पाताल....।
अमित काल
तिमिरागार

मात्र सहचर रहेगा
और उसी बीच
एक अदृश्य
दिव्य स्वर उभरा ।
शून्य में
एक बार भी
प्राकृत पुरुष का
दर्श होता
अनिर्वचनीय
हर्ष होता इसे
जीवन दर्पण आदर्श होता
तो फिर यह
क्यों व्यर्थ में
संघर्ष होता ।

अतीत की स्मृति में
सभीत मति
डूब रही है
अधीत के प्रति
उदास ऊब रही है
उस का उर
भर भर आ रहा है
अर्थ - पूर्ण - भावों से
और आज तक
जो कुछ घटित हुआ
हो रहा है
उसे भीतर से बाहर
शब्द रूप देकर
निष्कासित करने को

एक बड़ी
विवेकभरी
उत्कण्ठा उठी है
पर !
भाग्य साथ नहीं देता
कण्ठ कुण्ठित है
केवल रुक रुक कर
दीर्घश्वास की पुनरावृत्ति
प्रकट कर रही है
भीतर अशुभतर घुटन है
पश्चाताप की ज्वाला में
झुलस रहा है
अन्तर - जगत्
इस दयनीय दृश्य को
सेवा शीलवती
मेरी चेतना

खुली आँखें से
पी रही है
मति की,चिति की
एक जाति है ना!
यही कारण है
कि
चिति भी तरल हो आई
और सरल हो आई
वैसी मति भीतर से
तरल सरल नहीं है
स्वभावशील से
गरल ही है
और दोनों के बीच
धीमे धीमे
आदान प्रदान
प्रारम्भ होता है भावों का

मति का भाव
दीनता से हीनता से भरा
प्रकट होता है
भावी काल का अनन्त प्रवाह
असहनीय विरह वेदना में
व्यतीत होगा
वह अनन्त विरह
सहचर मीत होगा
मेरा तब ।
रह रह कर नाथ की स्मृति
विरह अनल में
घृताहुति का
काम करेगी

अब चेतना मुख खोलती है
कि
पुरुष तो पुरुष होते हैं
और उनका
सहज धर्म है वह
हमारे लिए अभिशाप नहीं
वरदान ही है
और दुखद बन्धन
बलिदान का
अवसान है
'पुरुष को मुक्ति मिलना
विकृति से लौट
प्रकृति का प्रकृति में
आ मिलना है'
अपने में खिलना है

अपनी अपनी पूर्ण कलायें
पूर्ण खुलना है
सम्पूर्ण शुचिता लिए
चन्द्र की चाँदनी सी।
एकतत्व में सुख है
अनेकत्व में दुख ।
एकत्व में बन्धन नहीं
सदा स्वतन्त्रता
और ! मौन छा जाता है
इधर मैं 'आत्मा' पुरुष ।
एक कोने में
बैठा हूँ स्तब्ध
निशब्द.... केवल हूँ

किन्तु मम ध्रुव सत्ता
तरल नहीं सजल नहीं
सघन हो आई
वस्तुस्थिति का
गति परिणति का
अंकन कर रही है
इस निर्णय के साथ, कि
मति से बातचीत करती
इस चिति से भी
पीठ फेर लेना विरति लेना
औचित्य होगा
और
रोषातीत
तोषातीत
परम पुरुष की
यही तो है
'परुषता और पुरुषता'
यह प्रमदा में कहाँ
प्रकृति में !

□□□

अधर के बोल

सरस सलिल से
भरे हुए हो
कलुष कलिल से
परे हुए हो
इस धरती से
बहुत दूर हो तुम !
शुद्ध शून्य में
जलधर हो कर
अघर डोल रहे
इधर यह मयूर
चिर प्रतीक्षित है
आपकी इंगन कृपा से
दीक्षित है।
ऊर्ध्वमुखी हो
जिजीविषा इस की
बलबती है महती
तृषातुरा है
आज तक इस के
कायिक - आत्मिक पक्ष
अमृत के बदले
जहर तोल रहे
तभी तो
अंग अंग से इस के
समग्र सत्व से
नीलिमा फूट रही है

इसलिए इसे
जोर शोर से
गरजो घुमड़ घुमड़ कर
सम्बोधित करो !
सुधा वर्षण से शान्त शुद्ध
परमहंस बना दो इसे
विलम्ब मत करो अब ।
ऐसे इस के
अपनी भाषा में
शुष्क नीलम
अधर बोल रहे ।

□□□

तोता क्यों रोता

मानस - संकेत

कृपा हुई गुरु की। वरद हस्त रहा इस मस्तक पर। अणु - अणु का अतिशय ज्ञात हुआ। कण - कण का परिचय प्राप्त हुआ। पर प्राप्तव्य तो पर में परे है, इस सन्धि की गन्ध को भी इसकी नासा ने पी डाली। उसी का परिणाम है यहाँ परम की उपेक्षा हुई। चरम की अपेक्षा हुई। और चरम की ओर चल पड़े ये चरण चारु चाल से। चरण - संचरण जीवन बना इस चरका।

पथ पर बहुत दूर चल आया है यहाँ लो ! चलता - चलता निश्छल मन तरल चंचल हो आता है, और कुछ कहता है। हे साधक पुरुष! ना तो मैं करण हूँ। न ही उपकरण! हूँ केवल अन्तःकरण मैं, अदृष्ट से उपजा हूँ। इसीलिए आकारशून्य अदृश्य हूँ। ज्ञाता द्रष्टा नहीं अज्ञ अद्रष्टा हूँ। फिर भी अधिष्ठाता माना जाता हूँ उपचार से। आचार - रहित विचारों का अधिकरण हूँ प्रकृति का पुत्र! लाड़ला।

किन्तु तुम हो विशुद्धतम करण। निश्चित ढलोगे तुम शाश्वत - सुख - सत्ता के अनन्त अधिकरण में। इसलिए पथ पूर्ण होने से पूर्व इस युग को कुछ तो दो। और मन मौन में डूबता है।

मन की प्रेरणा से साधक पुरुष प्रेरित हुआ। सुदूर पीछे रहे, अमूर्त पथ के पथिकों पर करुणा आई और सूचना - फलकों के रूप में इन शब्दों को छोड़ता हुआ आगे बढ़ता है यह साधक, सहज गति से। और पथिकों से विशेष निवेदन करता है कि वे इन सूचना - फलकों को साथ लेकर इन शब्दों को छोड़ता हुआ आगे बढ़ता है यह साधक, सहज गति से। और पथिकों से विशेष निवेदन करता है कि वे इन सूचना - फलकों को साथ लेकर न चलें, वरन् इनसे सूचित भाव का अनुसरण करें, और शीघ्र सुख का वरण करें, धन्य!

गुरु - चरणारविन्द - चंचरीक

(आचार्य विद्यासागर मुनि)

आमुख ये कविताएँ : वे कविताएँ

'ये कविताएँ' से मेरा मतलब उन रचनाओं से है, जो इस संकलन में प्रकाशित हैं और 'वे कविताएँ' से मतलब उन-उन तमाम आधुनिक कविताओं से है, जो मंच, माईक या अखबार को दृष्टि में रखकर लिखी जा रही हैं रोज-रोज सहस्रों हाथों से। 'वे कविताएँ' कहने को कविताएँ ही कहलाती हैं, पर उनके जन्म के पीछे रचनाकार के यश/ख्याति/प्रतिष्ठा और कहें कुछ अंशों में अर्थ की कामना जुड़ी हुई रहती है। 'वे कविताएँ' श्रम, बुद्धि और अध्ययन से ही बनती हैं, पर 'ये कविताएँ' कहीं भी उनसे तौली नहीं जा सकतीं। 'ये कविताएँ' अपने आधार में जिन तत्त्वों को लिये हुए हैं उनमें श्रम, बुद्धि और अध्ययन भर नहीं है; दार्शनिकता, वैचारिकता और अध्यात्म की ऊर्जा भी इनके आधारबिन्दु हैं। इनमें दर्शन के नाम पर सम्यक्-दर्शन या जैनदर्शन की कोई चासनी बलात् नहीं दी गई है, वरन इन्हें पढ़ते - पढ़ते विद्वान आदमी को जैनदर्शन/ सम्यक्-दर्शन का दिव्य - दर्शन होने लगता है। वह बिन्दु में गहराई अथाहने लग जाता है। बिन्दु - बिन्दु है, सिन्धु - सिन्धु; पर जब आचार्य श्री के काव्य - बिन्दु से साक्षात्कार होता है, तब वह अपने आप काव्य - सिन्धु-सा विराट होता चला जाता है।

मैं उनकी कविताओं को लेकर नई बात बतला देना चाहता हूँ जिसे समीक्षक, आलोचक या भूमिकाकार अक्सर अपनी दृष्टि से ओझल कर जाते हैं।

ले लें उनकी ये पंक्तियाँ :

मन की खटिया पर
वयोवृद्धा आशा
जीवित थी।

'खटिया' शब्द यहाँ साधारण पाठक को खटक सकता है। शहर में ऊँचे - ऊँचे भवन और सिंचित उद्यान देखते रहने वाले जन, नैर्जन्य में झोपड़ी और झाड़ - झंखाड़ देखकर ऐसा मुँह बिदकाते हैं, जैसे कुछ वीभत्स-सा देख लिया हो। सम्भवतः यही दृष्टि आजकल का पढ़ा-लिखा पाठक भी लेकर चलने लगा है, किसी रचना में 10-5 कठिन या अनसुने/अनबाँचे शब्द देखने को मिल जाएँ तो रचना को विशिष्ट मान बैठता है। रोजमर्रा बोलचाल में आने वाले शब्दों से वह प्रभावित नहीं होता दिखता। जैसे क्लिष्ट शब्दों से ही साहित्य बनता हो! आचार्यश्री इस सारे संकलन में कहीं भी शब्द - यात्रा पर नहीं दिखे, वे विचार - यात्रा के पथिक बनकर चले हैं पृष्ठ-दर-पृष्ठ। जिस तरह परिव्राजक महावीर अपने मंगल - विहार के दौरान पतितों का उद्धार करते चले हैं, उसी तरह आचार्यश्री अपनी काव्य-यात्रा में शब्दों का उद्धार करते

दिखते हैं। यों उन्होंने साधारण शब्द पकड़ कर शिल्प के विरूप होने का खतरा लिया है, फिर भी अपनी भावभूमिका के कारण उनकी कविता का हर शब्द सम्मान पाता गया, जो शब्द अछूत समझकर विद्वानों द्वारा डिक्शनरी में सम्मिलित नहीं किए गए; आचार्यश्री ने उनका 'नागरिक अभिनन्दन' किया है और वे (शब्द) स्थापित होते चले गए। आचार्यश्री यह नहीं सोचते कि इन/ऐसे शब्दों से उनकी कविता का क्या होगा? पढ़ते - पढ़ते लगा कि शब्दों का खतरा झेल कर ही वे लोकप्रिय बने हैं, यह घोषणा मैं कर रहा हूँ। एक बात और; शब्द घटिया नहीं होते, उनका उपयोग करने का ढंग घटिया होता है। आचार्यश्री ने दोनों प्रकार का घटियापन नहीं स्वीकारा, और पंक्ति-पंक्ति में आत्मा की गंध जीवित बनाए रखने में वे सफल रहे हैं। यों जिनने उनकी कृति 'नर्मदा का नरम कंकर' पढ़ी है वे कुछ उल्टा कहते मिले हैं -- 'बड़ी कठिन भाषा है।' परन्तु इस संकलन में आचार्यश्री हर पृष्ठ को बोधगम्य बनाए रहे हैं बराबर।

'बिना दान भी, जीवन चलाना पुण्य, की निशानी है'

लगता है आचार्यश्री को खतरा मोल लेने की आदत है। यहाँ शब्द से नहीं तो भावपक्ष से उन्होंने खतरा लेने का प्रयास किया है। जब सारा संसार, दान के बाद जीवन को जीवन मानता है, वहाँ वे 'बिना - दान' के जीवन का भी मूल्यांकन करते हैं। पढ़ें रचना 'पंकिल पद'। दार्शनिक की गंभीर आवाज सुनाई देने लगेगी।

'परम नमन में रम'

यह एक पंक्ति है; मगर एक पूरे पुराण का संदेश लेकर प्रकट हुई है। आदमी नाम का वह 'जीव' कहाँ रमे? उसे (आदमी को) यह भी नहीं मालूम। आचार्यश्री की दार्शनिक वृत्ति का इस कविता से पूरा परिचय प्राप्त हो जाता है, जब पढ़ने को मिलता है -

चरम चमन में रम
नरम में न रम, न रम!

संकलन की अन्य कविताएँ भी उच्च - मनन की गौरव गरिमा से मंडित हैं। खास तौर से 'तोता क्यों रोता' रचना; जिसके नाम से प्रस्तुत पुस्तक का संज्ञाकरण किया गया है, अपनी वैचारिक - गहनता के लिए पाठकों द्वारा बार - बार पढ़ी जायेगी। हर बार एक रहस्य उद्घाटित होगा। हर बार सोच का नया क्षितिज नेत्र - पटल से टकरायेगा। हर बार कविता से ही कुछ वार्ता करता लगेगा उसका बोधी - मन।

कहने को इस पुस्तक के नन्हें - से कलेवर में 55 रचनाएँ संगृहीत हैं, पर पढ़ने वाले कहेंगे - वे 55 रेखाएँ हैं, काव्य की अनुभूति की; अध्यात्म की और एक पूर्ण कवि के चिन्तन की।

आचार्यश्री का व्यक्तित्व और कृतित्व विशेषणों से परे हैं, यदि कहा जाय कि वे युग के महाकवि हैं या श्रेष्ठकवि हैं, तो विशेषण बौना लगता है। युग के हाथों और मस्तिष्क में इतनी शक्ति नहीं कि कोई नया विशेषण गढ़ दे। (कोई गढ़ भी दे तो आचार्यश्री कब स्वीकारने वाले हैं?) जो दिगम्बरत्व धारण कर चुके हैं, वे अब और कुछ धारण करने की रौ में नहीं आ सकते, पर यह सही है कि पू. विद्यासागर जी तपश्चर्या में जितने आगे हैं, उतने ही वे कविता में भी हैं। उनका कविता-प्रेम ही उनकी 'मनःसाधना' है, आत्मसाधना है। जबलपुर - प्रवास के दौरान उन्होंने 'मूकमाटी' नाम से जो सुन्दर काव्य प्रारम्भ किया है, उसे पढ़ने के बाद पाठक। आलोचक मेरे विचारों को अक्षरशः हृदय में धारण कर सकेंगे। 'मूकमाटी' महाकाव्य की श्रेणी का एक असामान्य ग्रन्थ सिद्ध है। उसकी तुलना के लिए हिन्दी के संसार में शायद अन्य छन्दोमुक्त काव्य न निकले तो आश्चर्य नहीं।

सुनो, मुनि को सभी श्रावकगण देखते/सुनते रहे हैं, मुनि-स्वभावी कवि अब देखने को मिले हैं। उनकी कविताओं का यह संकलन उनकी जबलपुर - प्रवास की स्मृतियों को जन - जन के मन में झंकृत करता रहेगा।

सुरेश सरल
'सरल कुटी'
293, गढ़ाफाटक, जबलपुर
(म.प्र.)

अनुक्रम

१ नयन–नीर
२ चरण – पीर
३ पूज्य, पूजक बना
४ पथ पूर्ण हुआ
५ चिन्ता नहीं, चिन्तन
६ प्रार्थना और .....!
७ प्यास .....
८ कम–बख्त
९ मन की खटिया
१० खरा सो मेरा
११ पंकिल पद
१२ गिरगिट
१३ पानी कौन भरे?
१४ आस अबुझ
१५ नरम में न रम
१६ मेरा वतन
१७ क्षणिकायें
१८ चुनाव .....!
१९ हरिता की हँसी
२० छुवन .....!

२१ सत्य, भीड़ में!

२२ तुम कण; हम मन

२३ हुंकार अहं का

२४ मिलन नहीं, मिला लो.....!

२५ रंगीन व्यंग

२६ मन की मौत

२७ प्रलय काल

२८ पेट से पेटी

२९ बोझिल पद

३० सन्धि, अन्धी से

३१ काया, माया

३२ समता.....!

३३ दयालु–पंजे

३४ द्विमुख–पंथी

३५ संन्यास

३६ मोम बनूँ मैं

३७ कुटिया .....!

३८ अनमोल की आस

३९ माहोल की प्यास

४० संयत आँखें

४१ नाटक

४२ सरगम स्वरातीत

४३ बधिर बनूँ

४४ चख जरा

४५ अवतार.....!

४६ छले छाँव में

४७ कैंची नहीं, सुई बन

४८ मौन मालती

४९ बादल धुले

५० मुक्तिका

५१ तोता क्यों रोता?

५२. गीली आँखें

५३ हास्य के कण

५४ सातत्य

५५ आभा की डूब

नयन नीर

प्रभु के प्रति किस में?
इस में
प्रीति का वास है
प्रतीति पास है
पर्याप्त है यह,
अब इसकी
नयन ज्योति
चली भी जाय !
कोई चिन्ता नहीं,
किन्तु
कहीं ऐसा न हो
कि
प्रभुस्तुति से पूर्व
प्रभु नुति से पूर्व
इसके
करुण नयनों में
नीर कम पड़ जाय ।

□□□

चरण पीर

पथ और पाथेय का
परिचय क्या दूँ?
प्रायः परिचित हैं
नियम से जो
आदेय दिखाते,
पथ अभी
भले ही दूर हो अपरिमित !
परवाह नहीं
किन्तु
कहीं ऐसा न हो
कि
आस्था के गवाक्ष में से
गन्तव्य दिख जाने से
इसके
तरुण चरणों की
पीर कम पड़ जाय ।

□□□

पूज्य, पूजक बना

यह सतयुग नहीं है
कलि - युग है,
भीतर ही भीतर
अहं को रस मिलता है ।
आज ! लक्ष्मी का हाथ
ऊपर उठा है
अभय बाँट रहा है
परसाद के रूप में
और नीचे है
जिसके चरणों में
शरण की अभिलाष ली
लजीली - सी
लचीली - सी
नतनयना
गतवयना
सती सरस्वती
प्रणिपात के रूप में ।

□□□

पथ पूर्ण हुआ

वहीं अधिष्ठान है
सुख का
मृदु नवनीत जिसका पुन
मथन नहीं है,
वही विज्ञान है
ज्ञान है
निज रीत
जिसका पुनः
कथन नहीं है,
वही उत्थान है
थान है
प्रिय संगीत
जिसका पुन
पतन नहीं है।

□□□

चिन्ता नहीं, चिन्तन

मानस का कूल है
समता का प्रकाश
अन्तिम विकास,
तामसता का विलास
अन्तिम हास!
परस्पर प्रतिकूल
दो तत्व
एक बिन्दु पर स्थित हैं
दोनों
शुभ्र ! बाहर से
क्षीर - नीर - विवेक
धीर गम्भीर एक टेक
जीवन लक्ष्य की ओर
बढ़ रहा है इनका
एक का
तत्व चिन्तन के साथ
और एक का
विषय - चिन्ता के साथ
एक साधु है
एक स्वादु ।

□□□

प्रार्थना और !

हे! परमात्मन्!
यह सब
आपके प्रसाद का ही
परिपाक है पावन
कि
पाँच खण्ड का प्रासाद
पास है
अप्सरा - सी भी प्यारी पत्नी
प्रमदा होकर भी
पति की सेवा में
अप्रमदा है प्रतिपल !
प्राण - प्यारे दो - दो पुत्र
भोग उपभोग सम्पदा!!
सम्पन्न हूँ सानन्द
किन्तु
एक ही आकुलता है
कि
पड़ोसी का
दस खण्ड का महा भवन !
(मन में खटकता है रात दिन !)

□□□

प्यास

पर पर फूल रहा था
बार बार
तन - रंजन में
व्यस्त रहा था
चिर से भूल रहा था
लोकैषणा की प्यास आस
मेरे आस - पास ही
घूमती थी,
जन - रंजन में
व्यस्त रहा था
क्या तो
इसका मूल रहा था
कारण अकारण !
मन - रंजन में

मस्त रहा था
काल प्रतिकूल रहा था
भ्रम - विभ्रम से
भटकता - भटकता
मोह प्रभंजन में
त्रस्त रहा था,
किन्तु आज
शूल भी फूल रहा है
सुगंधित महक रहा है
नीराग - निरंजन में,
चिर से पला
कंदर्प दर्प
ध्वस्त रहा है
यह सब आपकी कृपा है
हे प्रभो!

□□□

कम बख्त!

कोई हरकत नहीं है
हरगिज कह सकता हूँ
यह हकीकत है
कि
हरवक्त
हर व्यक्ति का दिमाग
चलता तो है,
यदि संयत हो तो
वरदान होता है
सुख - सम्पादन में
एक तान होता है,
किन्तु
विषयों का गुलाम हो तो
और बे - लगाम हो तो
कमबख्त ! खतरनाक
शैतान होता है ।

□□□

मन की खटिया

कृपा पालित कपालवाली
अनुभव भावित भालवाली
ओ !'आदिम सत्ता'
कृपा पात्र तो बना ही दिया इसे
चिर से
युगों युगों से चुभते थे
जीवन के गहन मूल में
दुखद अभावों के शूल
भावों स्वभावों में
ढले,
बदले आज वे
सुखद फूल हो गये ।
जीवन - पादप
पतित - पात था
पलित - गात था
कषाय तपन के
तीव्र ताप से
आज

सलिल का सिंचन हुआ

शीतल - शीतल
अनिल का संचरण हुआ
सुर - तरु से
हरे - भरे
आमूल - चूल हो गये ,
सुरपति - पदवी
भव - भव वैभव पाने
मन की खटिया पर
वयोवृद्धा आशा
जीवित थी आज तक
दिवंगत हुई वह,
अब सब कुछ बस
जीर्ण - शीर्ण तृण सम
धूल हो गये
सब के सब
मन से बहुत दूर
भूल हो गये ।

□□□

खरा सो मेरा

आम तौर से
पके आम की यही पहिचान होती है
हाथ के छुवन से
मृदुता का अनुभव
फूटती पीलिमा
तैर आती नयनों में ।
फूल - समान नासा फूलती है
सुगन्ध सेवन से ।
फिर !
रसना चाहती है रस चखना
मुख में पानी छूटता है
तब वह क्षुधित का
प्रिय भोजन बनता है
यही धर्मात्मा की प्रथम पहिचान है ,
मेरा सो खरा नहीं
खरा सो मेरा
वाणी में मृदुता
तन मन में ऋजुता
नम्रता की मूर्ति
तभी तो
भव से प्राणी छूटता है,
मुक्ति उसे वरना चाहती है
और वह उसका
प्रेम - भाजन बनता है ।

□□□

पंकिल पद

धर्म - कर्म से विमुख होकर
पाप कर्म में प्रमुख होकर
अनुचित रूप से
धनार्जन कर
मान का भूखा बन
दान करने की अपेक्षा
समुचित रूप से
आवश्यक धन का अर्जन कर,
बिना दान भी
जीवन चलाना
पुण्य की निशानी है ।
कीचड़ में पद रख कर
लथपथ हो
निर्मल जल से
स्नान करने की अपेक्षा
कीचड़ की उपेक्षा कर
दूर रहना ही
बुद्धिमानी है ।

□□□

गिरगिट

जिस वक्ता में
धन - कंचन की आस
और
पाद - पूजन की प्यास
जीवित है,
वह
जनता का जमघट देख
अवसरवादी बनता है
आगम के भाल पर
घूँघट लाता है
कथन का ढंग
बदल देता है,
जैसे
झट से
अपना रंग
बदल लेता है
गिरगिट।

□□□

पानी कौन भरे ?

इष्ट - अनिष्ट के
योगायोग में
श्रमण का मन
अनुकूलता का
हर्ष का
प्रतिकूलता का
विषाद का
यदि अनुभव नहीं करता
तब यह नियोग है
कि उसी के यहाँ
प्रतिदिन पानी भरता है
और प्राँगण में
झाड़ू लगाता है 'योग'
और
विराग की वेदी पर
आसानी होता है
शुचि - उपयोग
भोक्ता पुरुष!

□□□

आस अबुझ

एक हाथ में दीया है
एक हाथ की ओट दिया
हवा से बुझ न पाये
अपना श्वास भी
बाधक बना है आज,
टिम टिमाता जीवित है
जीवन - खेल
स्वल्प बचा है
दीया में तेल
तेल से बाती का सम्बन्ध भी
लगभग टूट चुका है ,
जलती जलती
बाती के मुख पर
जम चुका है
कालुष कालिख मैल,
श्वास क्षीण है
दास दीन है
किन्तु आस अबुझ।
निज नवीन
प्रभु दर्शन की
कब हो मेल
कब हो मेल?

□□□

नरम में न रम

अरे ! मन
तू रमना चाहता है
श्रमण में रम
चरम चमन में रम
सदा सदा के लिए
परमनमन में रम
चरम में चरम सुख कहाँ?
इसलिए अब
स्वप्न में भी भूलकर
नरम नरम में
न रम! न रम !!

□□□

मेरा वतन

यह जो तन है
मेरा वतन नहीं है
तन का पतन
मेरा पतन नहीं है
प्रकृति का आयतन है,
जन - मन - हारक नर्तन
परिवर्तन वर्तन
अचेतन है
फिर, इसका क्यों हो
गीत गान कीर्तन ?
इतना तनातन
स्थायी बनाने का
और यतन
सब का स्वभाव शील है
कभी उत्थान,कभी पतन
मैं प्रकृति से चेतन हूँ
प्रकाश पुंज रतन हूँ
सनातन हो नित - नूतन
ज्ञान - गुण का केतन मेरा वतन है
वेदन - सावेदन अनन्त वेतन है
इसीलिए मैं
बे - तन हूँ ।

□□□

क्षणिकायें !

हम तट पर ठहरे
आ रही हैं हमारे
स्वागत के लिए
साथ लिए,
हास्य - मुखी मालायें
लहरों पर लहरें
गरदन झुकी हमारी
झुकी ही रह गई
मन की आस मन में
रुकी ही रह गई
पता नहीं चला
कहाँ वह गई
पल भर में,
निडर होकर हम भी
खतरे से खतरे
गहरे से गहरे
पानी में
उतरे / उतरते ही गये
और हमने पायी
चारों ओर जलीय सत्ता!
धीमी - धीमी श्वास भरती
हमें ताक रही चाव से

वह हमें रुचती नहीं
और हम
खाली हाथ लौटते - लौटते
यकायक सुनते हैं
कुछ सूक्तियाँ,
कि
प्रकृति को मत पकड़ो
पर! परखो उसे
वे क्षणिकायें हैं
पकड़ में नहीं आतीं
भ्रम - विभ्रम की जनिकायें हैं,
तुम पुरुष हो, पुरुषार्थ करो
कभी न होना
किसी से प्रभावित
भावित सत् से होना 'जो है'
इसी विधि से कई पुरुष विगत में
उस पार उतरे हैं
और निराशता के बदले आज
गहन गंभीरता से
भर भर भरे जा रहे
हमारे ये चेहरे ।

□□□

चुनाव !

डूबता हुआ विश्व
पा जाये
कूल - किनारा
और एक
तरण - तारण
नाव मिली प्रभु से
उस पर कौन - कौन आरूढ़ हुआ ?
प्रभु जानते हैं
और अपना - अपना मन !
पता नहीं
आज वह नाव
जीवित है क्या? नहीं
किन्तु नाव की रक्षा हो
एतदर्थ
एक परियोजना हुई
और वह जीवित है
चुनाव !

□□□

हरिता की हँसी

गन्ध की प्यास थी जिसे
तरंग क्रम से आई
हवा में तैरती, सुरभि सूँघती
फूली नासा से पूछतीं हैं
चंचल आँखें,
कौन - सी संवेदना में डूबी है?
जिसका दर्शन तक
नहीं हो रहा है
यहाँ भी है स्वाद की भूख
नासा फुस - फुसाती है
कहाँ भाग्यवती हो तुम !
मकरन्द का स्वाद ले सको
प्राप्त को नहीं, अप्राप्य को
निकट से नहीं, दूर से
निहारती हो तुम ! सीमित !
दिखाती हूँ, चलो तुम साथ
और फूला फूल
तामसता की राग - राजसता की

रक्ताभ ले व्यंगात्मक
इतरों का उपहास करता
हँसता दर्शित हुआ,
पर! आँखें
घबराती सी कहती हैं
सब कुछ रुचता है
सब में मृदुता है
पर !
रक्ताभ राजसता
चुभती है हमें
और कलियों का
जो हरीतिमा से भरी
चुम्बन लेती
प्रभु से प्रार्थना करती है
हे! हर्ष - विषाद - मुक्त
हरि - हर!
हर हालत में
हर सत्ता से
हरीतिमा - हरिताभ
फूटती रहे
हँसती रहे
धन्य!

□□□

छुवन !

प्रकृति प्रमदा
प्रेम वश
पुरुष से लिपटी
हरिताभ हँस पड़ी
प्रणय कली
महकी गन्ध भरी
खुल - खिल पड़ी
रक्ताभ लस रही
किन्तु !
पुरुष सचेत है
वह डूबा नहीं
प्रकृति जिसमें डूबी है
पुरुष की आँखों में
हीराभ - मिश्रित
नीलाभ बस रही ।

□□□

सत्य, भीड़ में !

कहाँ क्या? था विगत में
ज्ञात नहीं
अनागत का गात भी
अज्ञात ही
आगत की बात है
अनुकरण की नहीं
जहाँ तक सत्य की बात है
देश विदेश में भारत में भी
सत्य का स्वागत है
आबाल वृद्धों, प्रबुद्धों से
किन्तु
खेद इतना ही है
कि
सत्य का यह स्वागत
बहुमत पर
आधारित है ।

□□□

तुम कण, हम मन

मन का इंजन है
तन धावमान है
इंगित पथ पर,
पर ! उलझन में मन है
कभी करता है 'था' में गमन !
कभी सम्भावित में
भ्रमण - चंक्रमण
कब करता है? भावित रमण !
कभी विमन रहता
कभी सुमन
श्रमण का भी मन
और कुछ भूला सा
विगत में लौटा है
दयार्द्र कण्ठ है
कुछ कहना चाहता है
कण्ठ कुण्ठित है
लौट आ आशु गति से
तन से कहता मन
तुम साथ चलो